दैनिक जागरण
शांति समृद्धि की पहली सीढ़ी है

प्रधानमंत्री का संदेश

जैसी कि उम्मीद थी, प्रधानमंत्री का राष्ट्र के नाम संबोधन जम्मू-कश्मीर को लेकर किए गए ऐतिहासिक एवं निर्णायक बदलावों पर ही केंद्रित रहा। चूंकि अनुच्छेद 370 और 35-ए हटाने के बाद जम्मू-कश्मीर और साथ ही लद्दाख में एक नई शुरुआत होने जा रही है इसलिए यह समय की मांग थी कि खुद प्रधानमंत्री जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के साथ-साथ देश के लोगों से सीधे अपनी बात कहते। यह अच्छा हुआ कि उन्होंने वक्त की यह मांग पूरी की। राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में उन्होंने यह सही कहा कि एक सपने को पूरा करके एक नई शुरुआत होने जा रही है। इस क्रम में उन्होंने यह रेखांकित करके बिल्कुल सही किया कि यह प्रश्न दशकों से अनुत्तरित ही था कि आखिर अनुच्छेद 370 से जम्मू, कश्मीर और लद्दाख के लोगों को क्या लाभ मिल रहा था? इस सवाल का जवाब कम से कम उन्हें अवश्य देना चाहिए जो अनुच्छेद 370 हटाने और राज्य के पुनर्गठन का विरोध कर रहे हैं? उन्हें बताना चाहिए कि वे भेदभाव भरे और अलगाव को बल देने वाले उस प्रावधान की वकालत क्यों कर रहे हैं जो इस राज्य के दलितों और आदिवासियों के अधिकारों पर कुठाराघात करने के साथ ही राज्य के बाहर के लोगों से विवाह करने वाली युवतियों के अधिकारों का हनन करता था? ऐसे लोगों को प्रधानमंत्री की ओर से इंगित की गई उस विसंगति पर भी कुछ कहना चाहिए जिसके चलते राज्य के तमाम लोगों को विभिन्न चुनावों में वोट देने का अधिकार नहीं था।

प्रधानमंत्री ने देशवासियों को बल और संबल देने वाले अपने संबोधन में यह स्पष्ट करके तमाम अंदेशों को खत्म करने का ही काम किया कि जम्मू-कश्मीर को केवल कुछ कालखंड के लिए केंद्र के अधीन रखने का फैसला वहां के हालात सुधारने, भ्रष्टाचार एवं आतंकवाद पर लगाम लगाने, विकास और रोजगार निर्माण को गति देने के इरादे से किया गया है। उन्होंने यह जो भरोसा जताया कि जम्मू-कश्मीर को केंद्र शासित प्रदेश बनाए रखने की जरूरत लंबे समय तक नहीं पड़ेगी उसे पूरा करने में राज्य और खासकर घाटी के लोगों की महती भूमिका होगी। उम्मीद है कि वे अपनी इस भूमिका के महत्व को समझेंगे। वे इसकी अनदेखी नहीं कर सकते कि प्रधानमंत्री ने साफ तौर पर यह भी कहा है कि वह अनुच्छेद 370 हटाने के फैसले से असहमत लोगों के विचारों को सुनने-समझने को तैयार हैं। चूंकि प्रधानमंत्री ने जम्मू-कश्मीर के हालात ठीक करने में देश के लोगों से भी सहयोग की अपेक्षा की इसलिए देशवासियों की ओर से भी समवेत स्वर में यही संदेश उभरना चाहिए कि कश्मीर के साथ कश्मीरी भी हमारे हैं।

सड़क दुर्घटनाएं

उत्तराखंड में एक के बाद एक हो रही सड़क दुर्घटनाएं बेहद चिंताजनक हैं। जिस तरह मंगलवार को टिहरी व बदरीनाथ और फिर गुरुवार को पौड़ी के यमकेश्वर में स्कूली बच्चों व यात्रियों से भरे वाहन दुर्घटनाग्रस्त हुए, उससे परिवहन विभाग के सड़क सुरक्षा के दावों की सच्चाई सामने आ गई है। विभागीय लापरवाही इस बात से समझी जा सकती है कि दुर्घटना से दस दिन पहले स्वयं परिवहन मंत्री विभागीय अधिकारियों को स्कूली बच्चों को ले जाने वाले स्कूली व निजी वाहनों के खिलाफ सख्त जांच अभियान चलाने के निर्देश दे चुके थे। यदि विभागीय अधिकारियों ने मंत्री के आदेशों का पालन किया होता तो शायद यह नौबत नहीं आती। इससे साफ है कि सड़क सुरक्षा को लेकर विभाग कितनी गंभीरता से काम कर रहा है। वाहन दुर्घटनाओं की पूर्व में जब भी जांच हुई हैं, उनमें चालक की लापरवाही एक प्रमुख कारण के रूप में सामने आई है। मंगलवार को टिहरी में हुए हादसे में तो बगैर लाइसेंस अप्रशिक्षित चालक के वाहन चलाने की पुष्टि भी प्रशासनिक अधिकारियों ने की है। इससे पता चलता है कि परिवहन विभाग द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में वाहन जांच अभियान महज खानापूर्ति के लिए चलाया जाता रहा है। यदि अभियान में गंभीरता होती तो शायद ही कोई वाहन स्वामी अपना वाहन अप्रशिक्षित वाहन चालक के हाथ में सौंपने की हिम्मत कर पाता। दरअसल, देखा जाए तो परिवहन विभाग की नींद हमेशा ही किसी बड़ी दुर्घटना के बाद टूटती है। यह स्थिति तब है जब सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर एक पूरा विंग सड़क सुरक्षा के लिए गठित किया गया है। शासन से लेकर जिला स्तर तक सड़क सुरक्षा समितियां बनाई गई हैं। इनके लिए बाकायदा बजट का प्रावधान किया गया है। इस बजट से सड़क सुरक्षा के लिए वाहन व उपकरणों की खरीद का भी प्रावधान है। यहां तक कि एक पखवाड़ा सड़क सुरक्षा को लेकर ही समर्पित किया गया है। बावजूद इसके हालात बहुत अधिक सुधरते हुए नजर नहीं आ रहे हैं। जाहिर है कि सड़क सुरक्षा के नाम पर केवल खानापूर्ति की जा रही है। यदि ऐसा नहीं होता तो सड़कों पर धड़ल्ले से नियमों को ताक पर रख कर वाहन नहीं दौड़ रहे होते। सरकार को भी इस मसले को गंभीरता से लेना चाहिए। इसके लिए छोटे अधिकारियों के साथ ही बड़े अधिकारियों की जिम्मेदारी तय करनी होगी और लापरवाही पाए जाने पर उनके खिलाफ भी सख्त कदम उठाने होंगे। अन्यथा ऐसे हादसे रुकने का नाम नहीं लेंगे और लोग असमय काल के गाल में समाते रहेंगे।

नई शुरुआत के इंतजार में कांग्रेस

रशीद किदवई

क्या कांग्रेस का मौजूदा संकट गांधी परिवार की विरासत की समाप्ति पर मुहर लगाएगा या एक नई शुरुआत का जरिया बनेगा?

जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाए जाने के सवाल पर कांग्रेस जिस तरह असमंजस से दो-चार हुई वह कोई नई बात नहीं, क्योंकि वह एक अर्से से दुविधा से ग्रस्त है। उसकी सबसे बड़ी दुविधा पार्टी अध्यक्ष को लेकर है। राहुल गांधी के उत्तराधिकारी को लेकर सोनिया और प्रियंका के साथ खुद राहुल ने अभी तक कोई पसंद जाहिर नहीं की है। इसके चलते इस मसले पर अनिश्चितता और बढ़ गई है। देखना है कि यह दुविधा 10 अगस्त को होने वाली कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में दूर हो पाती है या नहीं? जब पार्टी राजीव गांधी का 75 वां जन्म दिवस जोर-शोर से मनाने की तैयारी में जुटी है तब असमंजस की स्थिति उसके लिए अच्छी नहीं। कुछ नेताओं को उम्मीद है कि अस्तित्व के संकट से जूझती पार्टी राजीव गांधी की विरासत के दम पर वापसी कर सकती है।

फिलहाल पार्टी के सामने सबसे बड़ी चुनौती राहुल का उत्तराधिकारी चुनने की है। इसे लेकर कांग्रेस में दो मत हैं। एक धड़ा सचिन पायलट या ज्योतिरादित्य सिंधिया जैसे युवा नेता को अध्यक्ष और मिलिंद देवड़ा को कोषाध्यक्ष बनाने पर जोर दे रहा है। वहीं दूसरा धड़ा मुकुल वासनिक, सुशील कुमार शिंदे या मल्लिकार्जुन खड़गे को अंतरिम मुखिया और पायलट, सिंधिया और देवड़ा को उपाध्यक्ष बनाने के पक्ष में है। पार्टी भविष्य में राहुल की भूमिका को लेकर असमंजस में ही है। पहले यह सोचा गया कि राहुल बिना किसी पद के वैचारिक धुरी की भूमिका में रहेंगे, मगर वह और उनकी टीम पदाधिकारियों की नियुक्ति, संसदीय रणनीति और सभी मुद्दों पर अहम भूमिका निभाना चाहती है। हाल में राहुल ने कर्नाटक संकट के लिए किसी भीतरी व्यक्ति को ही दोषी बताकर सबको सन्न कर दिया। राष्ट्रपति ट्रंप के बयान पर भी उनका रवैया शशि थरूर जैसे नेताओं की परिपक्व प्रतिक्रिया के उलट रहा। यही स्थिति कश्मीर मामले में भी दिखी। फिलहाल ऐसे कोई संकेत नहीं मिल रहे कि पार्टी की दशा-दिशा सुधारने के लिए राहुल कोई देशव्यापी कवायद करने जा रहे हों।

कांग्रेसी हलकों से मिले संकेतों के अनुसार प्रियंका को 2024 के चुनावों में प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के तौर पर पेश किया जा सकता है। हालांकि यह तीन व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। एक राहुल, दूसरे उनके उत्तराधिकारी और तीसरी खुद प्रियंका। 2022 के उत्तर प्रदेश चुनाव प्रियंका गांधी के लिए एक कड़ी परीक्षा होंगे। उन्होंने सोनभद्र मामले में कुछ दम जरूर दिखाया, लेकिन उन्नाव मामले में वह केवल ट्विटर तक ही सीमित रह गईं। उत्तर प्रदेश में मिशन 2022 के लिए प्रियंका को रोजाना करीब 16 घंटे कड़ी मेहनत करनी होगी। उन्हें सिद्दारमैया, ओमान चांडी और रमेश चेन्नीथला जैसे क्षेत्रीय क्षत्रपों की तरह उभरना होगा। इसके लिए दिल्ली की सुकून भरी और चमक-दमक वाली जीवनशैली का मोह भी त्यागना पड़ेगा।

अवधेश राजपूत

राहुल के इस्तीफे के बाद कांग्रेस का रोजमर्रा का कामकाज चुनौती बन गया है। जहां सोनिया गांधी ने स्वयं को संसदीय मामलों तक सीमित कर लिया है, वहीं प्रियंका की जिम्मेदारी बढ़ गई है। उन्हें विद्रोहियों से निपटने और अहम नियुक्तियों में मदद के साथ ही अग्रिम मोर्चे से अगुआई करनी पड़ रही है। एक दिन वह मुंबई में बगावत को सफलतापूर्वक शांत करके दिल्ली लौटी ही थीं कि मालूम पड़ा कि अमेठी के राजा रहे संजय सिंह और उनकी पत्नी ने पार्टी छोड़ दी। अपनी वक्तृत्व कला और अभिनय कौशल के लिए मशहूर पार्टी की राज्य इकाई के एक मुखिया भी भाजपा कार्यकारी अध्यक्ष के घर पर देखे गए। अगर अगले साल दिल्ली के विधानसभा चुनाव से पहले नवजोत सिंह सिद्धू कांग्रेस का चुनावी चेहरा बनते हैं तो इसके पीछे प्रियंका गांधी ही होंगी।

प्रियंका भले ही अध्यक्ष पद की दावेदार न हों, लेकिन संगठन महासचिव केसी वेणुगोपाल जैसे लोग उनका पाला नहीं छोड़ेंगे। यह कोई राज नहीं है कि छत्तीसगढ़, अरुणाचल की राज्य इकाइयों के प्रमुख, युवा कांग्रेस के अंतरिम अध्यक्ष और महाराष्ट्र एवं हरियाणा के लिए चुनावी टीम का चयन जैसी तमाम नियुक्तियां गांधी परिवार की मौन सहमति से ही हुई हैं। कांग्रेस को करीब से जानने वाला कोई भी शख्स बता सकता है कि किसी भी नियुक्ति को केवल परिवार के वरदहस्त से ही सुनिश्चित किया जा सकता है। भले ही यह मौखिक सहमति ही क्यों न हो। जहां राहुल अभी भी लोक सभा चुनाव में भारी पराजय की जिम्मेदारी तय करने पर अड़े हुए हैं। वहीं प्रियंका और सोनिया इस मुद्दे को तब तक टालकर और सबको साथ लेकर चलने की इच्छुक दिखती हैं जब तक कि कांग्रेस फिर से कुछ चुनावी सफलताओं का स्वाद नहीं चख लेती। इस मामले में भी उम्मीदें पूरी तरह प्रियंका पर ही टिकी हैं कि केवल वही राहुल गांधी को उनका रुख नरम करने के लिए मना सकती हैं।

अपने स्तर पर गांधी परिवार पार्टी संगठन से पूरी ताल मिलाए रखने में लगा है। अदालती लड़ाइयों के लिए उन्हें पार्टी नेताओं का पूरा समर्थन मिल रहा है। इनमें से दो मामले तो राहुल गांधी से ही जुड़े हुए हैं। बहरहाल इंदिरा गांधी के दौर में 1969 और 1977 में कांग्रेस में जैसे विभाजन देखने को मिले थे, उसकी तुलना में 2014 और 2019 में हार के बावजूद कांग्रेस में किसी तरह की बड़ी बगावत या बड़े पैमाने पर नेताओं ने पार्टी नहीं छोड़ी, लेकिन लगभग 15 पूर्व मुख्यमंत्रियों, दर्जनों पूर्व केंद्रीय मंत्रियों और पार्टी के पूर्व महासचिवों के रूप में वंशवादी नेताओं की खेप नई प्रतिभाओं को लुभाने के लिहाज से कुछ खास नहीं कर पाई है। जब मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री चुनने की बारी आई तो पार्टी अध्यक्ष राहुल की तुलना में प्रियंका का दखल ज्यादा रहा। इससे यह बहस जोर पकड़ने लगी है कि 'प्रियंका राहुल से बेहतर हैं।'

अगर अगला अध्यक्ष पार्टी के लिए समर्पित न होकर केवल गांधी परिवार की कठपुतली होगा तो कांग्रेस के लिए शायद इससे बुरा कुछ और न हो। जब 1997 में बिना किसी पद के सोनिया गांधी पार्टी में शामिल हुई थीं तो अध्यक्ष रहे सीताराम केसरी की कोई हैसियत ही नहीं रह गई थी। अक्सर ऑस्कर फर्नांडिस और वी जॉर्ज केसरी के आवास पर नियुक्तियों पर उनके दस्तखत कराने के लिए जाते थे। केसरी इससे खासे कुपित रहते थे कि उन्हें बस हस्ताक्षर करने तक ही सीमित कर दिया गया। क्या कांग्रेस का मौजूदा संकट गांधी परिवार की विरासत की समाप्ति पर मुहर लगाएगा या एक नई शुरुआत का जरिया बनेगा?

फिल्मकार महेश भट्ट कहते हैं कि हर अंत की राह में भी एक अंत होता है। कांग्रेस पार्टी उस अंत के पड़ाव पर पहुंच गई है, लेकिन हर एक अंत में नई शुरुआत भी होती है। क्या कांग्रेस अपने पुराने खोल से बाहर निकलकर उसमें नए सुधार कर सकती है। निजी तौर पर कांग्रेसी उनसे अवश्य सहमत होने चाहिए।

(स्तंभकार '24 अकबर रोड' और 'सोनिया-ए बायोग्राफी' पुस्तकों के लेखक एवं ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में विजिटिंग फेलो हैं)

response@jagran.com

कश्मीरियों से सच्चे संवाद की जरूरत

शंकर शरण

कश्मीरी मुसलमानों को मिथ्या इतिहास और झूठे विश्वास की हकीकत से परिचित कराना समय की मांग है

अनुच्छेद 370 हटाने के तुरंत बाद राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल का शोपियां जाकर लोगों से बातचीत करना एक सांकेतिक, पर महत्वपूर्ण कदम है। सरकार ने अपना संवैधानिक कर्तव्य पूरा कर दिया है। इसके बाद जम्मू-कश्मीर के जनजीवन के भारतीय जनजीवन से सहज मेल में कोई बाधा नहीं रह गई है। अब आगे की स्थिति कश्मीर घाटी के लोगों पर निर्भर है। इसमें सच्चे संवाद की मुख्य भमिका होगी। विशेषकर इसलिए, क्योंकि इस अनुच्छेद के हटने से पहले तक इसके बारे में अधिकांश झूठी या गोलमोल बातें होती रही हैं। फलतः जम्मू-कश्मीर ही नहीं, शेष भारत के लोग भी कई बिंदुओं पर भ्रामक मान्यताओं से ग्रस्त थे। अब यह स्पष्ट है कि जम्मू-कश्मीर की दो तिहाई आबादी और लगभग तीन-चौथाई क्षेत्रफल के लोग 370 हट जाने से बेहद प्रसन्न हैं। अब कश्मीरियों को भी समझना, समझाना होगा कि किसी राज्य की संपूर्ण जनता की भावना को एक क्षेत्र विशेष और उसके भी कुछ ही गुटों की इच्छा के लिए उपेक्षित करने का कोई नैतिक आधार नहीं है।

अनुच्छेद 370 के बने रहने से हानियां तो बहुत हुईं पर लाभ कुछ न हुआ। केवल कुछ विदेशी ताकतों ने उसकी आड़ लेकर कश्मीरियों को बरगलाया। यह बात फैलाई जाती रही कि जम्मू-कश्मीर को भारत से अलग करना संभव है। ऐसी ताकतें यह मानती थीं कि पाकिस्तान, जिहादी गिरोह और पश्चिमी एवं मुस्लिम देशों के छिपे-खुले समर्थन के बल पर यह काम हो जाएगा। अनुच्छेद 370 के हट जाने से इस घातक मंसूबे का कागजी आधार खत्म हो गया। आज शक्ति संतुलन और कूटनीतिक संतुलन भारत के पक्ष में है। पश्चिमी और मुस्लिम देशों ने 370 हटाने पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं दी। चूंकि गत दो दशकों से पाकिस्तान की छवि जिहादी आतंकवाद के पोषक की बनी है इसलिए पाक को कश्मीर पर कुछ बेजा करने के लिए बाहरी सहयोग मिलने की आशा नगण्य है।

कश्मीरी मुसलमानों के साथ इतिहास, वर्तमान, राजनीति, संस्कृति, अर्थव्यवस्था आदि से संबंधित सभी मुद्दों पर खुलकर वैचारिक आदान-प्रदान होना चाहिए। यद्यपि उन्हें अब भी बरगलाने की कोशिश होगी। उन्हें 'पीड़ित' और 'अन्याय का शिकार' कहा जाएगा, लेकिन वास्तविकता क्या है? जरा वर्ष 1989-90 में कश्मीर के हिंदुओं की स्थिति से तुलना ही कर लें। आज कोई जिहादी कश्मीरी मुसलमानों के दरवाजों पर जा-जाकर धमकियां नहीं दे रहा है। उन्हें लाउडस्पीकरों से घाटी छोड़ने का अलटीमेटम नहीं मिल रहा है। आतंकी गुटों द्वारा उनकी महिलाओं को उठा ले जाने की धमकी नहीं दी जा रही है। न ही सरकार ने उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया है। कश्मीरी हिंदुओं को यह सब झेलना पड़ा था।

वस्तुतः सच्चा संवाद समानता के आधार पर ही चल सकता है। तभी वह प्रभावी भी होता है। इसे रेखांकित करना चाहिए कि दशकों की लफ्फाजी, संकोच, कपट या मिथ्याचार ने कोई अच्छा फल नहीं दिया। झूठे नेताओं की बातों का पर्दाफाश भी करना चाहिए, जैसे महबूबा मुफ्ती यह छिपा रही हैं कि जम्मू-कश्मीर का संपूर्ण विलय विशेष दर्जा वाले अनुच्छेद के संविधान का हिस्सा बनाने से बहुत पहले हो चुका था। सच तो यह है कि अनुच्छेद 370 छल-पूर्वक बनाया गया था और वह 'अस्थाई' ही था। उसमें उसे खत्म करने का उपाय भी लिखा हुआ था। सरकार ने केवल उसी को अपनाया।

भारत प्राचीन सभ्यता वाला देश है। वह कोई जमीन का टुकड़ा नहीं है जिसे यह या वह नेता जैसे-तैसे तय करता रहे। संपूर्ण इतिहास में किसी विदेशी ने भी कश्मीर को कभी भारत से अलग अस्तित्व के रूप में नहीं देखा। राजे-रजवाड़े, शासक जरूर बदलते रहे, मगर कश्मीर भारतीय हिंदू सभ्यता का अटूट एवं महत्वपूर्ण हिस्सा रहा। 1947 का भारत विभाजन या बाद में हुई जिहादी हिंसा, कश्मीरी हिंदुओं को मार भगाना, आदि भी कोई अंतिम या निर्णायक घटना नहीं है। यह शक्ति संतुलन के हेर-फेर हैं। इससे भारतीय सभ्यता के महत्व पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। अकबर से लेकर डलहौजी तक का शासन आया और गया। तब अब्दुल्ला या मुफ्ती कहां के खुदाई मुख्तार हैं? अब भारतीय समाज जग रहा है, अपना सभ्यतागत कर्तव्य पुनः अपने हाथ में लेने के लिए सचेत हो रहा है। दुनिया के दूसरे देश अपनी सभ्यता-संस्कृति के प्रति जो अधिकार रखते हैं उसकी तुलना में भारतीय समाज कुछ विनम्र ही रहा है। भारत के सिवा किस देश में अल्पसंख्यकों को गैर-अल्पसंख्यकों की तुलना में अधिक संवैधानिक अधिकार मिले हुए हैं? दुर्भाग्यवश ये सब बातें हम अपनी ही जनता के बीच रखने में विफल रहे हैं। इसीलिए यहां मुसलमानों को अंदर-बाहर के स्वार्थी लोगों द्वारा बरगलाना चलता रहा है। इसे भी खत्म करना होगा। अभी महबूबा ने 'एकमात्र मुस्लिम बहुसंख्या वाले राज्य' में जनसांखियकी बदले जाने की आशंका जताई है ताकि 'मुसलमानों को दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया जाए।' यह दर्शाता है कि उन्होंने राज्य के हिंदुओं, सिखों, बौद्धों को कभी गिनती में नहीं लिया। चार दशको में कश्मीर की जनसांख्यिकी क्रूरतापूर्वक बदली गई। हिंदुओं और सिखों के दर्जनों सामूहिक संहार हुए। क्या कभी महबूबा या उनकी पार्टी ने इसके खिलाफ कुछ किया? उलटे महबूबा के पिता मुफ्ती मुहम्मद सईद जब गृह मंत्री थे तब कश्मीरी पंडितों के सर्वाधिक सामूहिक संहार हुए और उन्हें अपने पुरखों की भूमि छोड़कर अपने ही देश में शरणार्थी बनना पड़ा।

जम्मू-कश्मीर के पुनर्गठन, पाकिस्तानी बयानों और देसी अतिवादियों या विदेशी मीडिया की टिप्पणियों पर भी खुलकर संवाद चलाना चाहिए, क्योंकि कश्मीरी मुसलमानों को झूठे इतिहास, झूठे विश्वास और झूठे शक्ति समीकरणों का भुलावा दिया जाता रहा है। अनेक दलों और मतवादी बौद्धिकों ने अपने-अपने स्वार्थवश उन्हें भ्रमित रखा है। चूंकि जमीनी राजनीति शक्ति के साथ-साथ मनोबल से भी चलती है अतः सरकार और समाज को पूरे विश्वास के साथ उन मिथ्याचारों को बेपर्दा करना चाहिए, जिनके सहारे सांप्रदायिक-तुष्टीकरण की घातक राजनीति चलती रही है। सच्चाई और सद्भाव के साथ ऐसा करने पर कश्मीरी मुसलमान वास्तविकता समझकर देश की गति के साथ सहज शामिल हो सकेंगे।

(लेखक राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

लोभ

मनुष्य के भीतर तमाम नकारात्मक प्रवृत्तियों में से लोभ एक मुख्य विकार है। किसी भौतिक वस्तु, धन, जमीन-जायदाद से जुड़ा आकर्षण और उसे अधिक से अधिक पाने की तृष्णा को लोभ कहते हैं। लोभी मनुष्य की इच्छाओं की कोई थाह नहीं। इससे वह सामाजिक प्रतिष्ठा के पतन की ओर बढ़ रहा होता है। लालच के कारण ही व्यक्ति की बुद्धि और विवेक कार्य करना बंद कर देते हैं। हमारे धर्मग्रंथों में शांति, मोक्ष और आध्यात्मिक सुख पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार जैसे विकारों को दूर करने को बहुत तवज्जो दी गई है। दूसरे नजरिये से देखा जाए तो मनुष्य अनेक प्रकार के सामाजिक संबंधों के जाल में फंसा है। लोभ भी मनुष्य की एक प्रकार की आवश्यकता है, क्योंकि इसके बिना किसी भी व्यक्ति को परिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना कठिन हो जाता है। सीमित दायरे में यह गंभीर विकार नहीं है, परंतु जब ये अपनी सीमा का उल्लंघन करता है तो बड़ा विकार बन जाता है। यदि गहनतापूर्वक विश्लेषण करें तो पता चलता है कि अगर मनुष्य अपने भीतर और बाहर के अस्तित्व के साथ तारतम्य में एकीकृत है तो वह परिपूर्ण है। उसे किसी प्रकार का विकार नही घेर सकता, परंतु यह नहीं है तो वह पूर्णतः खाली है। यही खालीपन उसे लोभ, मोह और महत्वाकांक्षा की ओर धकेलता है।

एक बार इस लालच और महत्वाकांक्षा रूपी जाल में फंसने के बाद व्यक्ति के भीतर स्वाभाविक रूप से अधिक पाने की मानसिक प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है जो तृष्णा में परिणत हो जाती है। इस अवस्था में बुद्धि कुंठित हो जाती है और व्यक्ति सही-गलत के फर्क में अंतर नही कर पाता है। यह पल सबसे हानिकारक होता है, क्योंकि लोभ व्यक्ति को पथभ्रष्ट कर देता है। इसलिए मनुष्य के पास लोभ रूपी विकार से निजात पाने के लिए सबसे सरल उपाय है कि उसे सब्र, सीमा और संयम के दायरे में रहकर ही हितपूर्ति करनी चाहिए ताकि सामाजिक और मानवीय संबंधों से नाता न टूटे और समाज मे संतुलन कायम रहे। यही जीवन जीने की आदर्श स्थिति है।

शिवांशु राय

चुनाव में सरकारी खर्च की बहस

नरेंद्र जांगिड़

कुछ जानकारों का मानना है कि सरकारी धन से चुनावी प्रक्रिया में भ्रष्टाचार और कारपोरेट का शिकंजा कमजोर होगा

लोकतंत्र का पर्व भी होली-दिवाली की तरह हो चला है जिसमें राजनीतिक दलों द्वारा पैसा पानी की तरह बहाया जाता है। लोग पैसों की इस बहती गंगा में अपने वोट के जरिये डुबकी लगाते हैं और बदले में बहुत कुछ निकाल लाते हैं, फिर अगले पांच वर्षों तक इस पर्व का इंतजार करने लगते हैं। चुनाव दर चुनाव यही किस्सा दोहराया जा रहा है। देश में चुनाव लगातार महंगा होता जा रहा है, क्योंकि चुनाव में उम्मीदवार के खर्चों पर नियंत्रण है, जबकि राजनीतिक दलों के खर्च पर नहीं। अधिकांश राजनीतिक दल और कई विशेषज्ञ चुनाव में सरकारी वित्त पोषण के पक्षधर हैं। उनकी दलील है कि इससे चुनाव में उपयोग किए जाने वाले काले धन पर रोक लगाई जा सकेगी तथा एक स्वच्छ और स्वस्थ लोकतंत्र की छवि को बरकरार रखा जा सकेगा।

राजनीतिक दल, चुनाव आयोग के तमाम नियमों एवं कानूनों की काट खोज लेते हैं। चुनावों में खर्च किए जाने वाले बेहिसाब धन पर लगाम लगाने के लिए इस बात पर बहस चल रही है कि क्या सरकारी खर्चे पर चुनाव कराना उचित है? इसका मतलब है कि सरकार राजनीतिक दलों या उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने के लिए धन देती है। इसका मुख्य उद्देश्य उम्मीदवारों के लिए धनवान लोगों से चंदा हासिल करने से रोकना है। यानी सरकार उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने के लिए धन मुहैया कराएगी ताकि भ्रष्टाचार व राजनेताओं पर कारपोरेट प्रभाव को कम किया जा सके। हालांकि चुनाव आयोग स्टेट फंडिंग के पक्ष में नहीं है, क्योंकि आयोग राज्य द्वारा प्रदान किए गए तथा उससे अतिरिक्त व्यय पर प्रतिबंध लगाने व जांच करने में सक्षम नहीं होगा।

कई लोग जहां इस व्यवस्था के पक्ष में हैं, वहीं बहुत से लोगों का यह मानना है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पश्चिम के लोकतंत्र की तरह नहीं जहां राजनीतिक दल का मात्र शासन से ही संबंध होता है। भारत में दलों का व्यापक सामाजिक सरोकार भी रहा है।

वैसे भी चुनावों में सभी राजनीतिक दलों के लिए मैदान बराबरी का होना चाहिए। बड़े राजनीतिक दल जिनका प्रदर्शन भले ही कितना ही खराब क्यों न रहा हो, अपने धन-बल के दम पर मतदाताओं को प्रभावित करने में अक्सर सफल हो जाते हैं और हम स्वयं को ऐसी व्यवस्था देने में असमर्थ हो जाते हैं जो जनता के कल्याण के बारे में सोचती हो।

गौरतलब है कि चुनाव आयोग ने लोकसभा और विधानसभा के चुनावों के लिए प्रत्येक उम्मीदवार के लिए खर्च की सीमा तय कर रखी है, लेकिन अक्सर देखने को मिलता है कि उम्मीदवार इस सीमा से बाहर जाकर खर्च कर रहे हैं, फिर भी आयोग के लिए उनके खिलाफ कार्रवाई करना आसान नहीं रहता, क्योंकि इसे साबित करना मुश्किल होता है। ऐसे में सरकारी खर्चे पर चुनाव अहम साबित हो सकता है। हम प्रायः इस बात का रोना रोते हैं कि राजनीति एक ऐसी दलदल है जिसमें काले धन के उपयोग से ही चुनाव जीते जा सकते हैं। इसे देखते हुए हमें कुछ ऐसा करने की जरूरत है ताकि सरकार द्वारा चुनावों के लिए धन मुहैया हो सके।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

विश्वास बढ़ाने के लिए करने होंगे उपाय

'कश्मीर में शांति और सुरक्षा की चुनौती' शीर्षक से लिखे लेख में राजीव मिश्रा ने जम्मू-कश्मीर की संवैधानिक स्थिति में बदलाव के बाद वहां की सुरक्षा और विकास की चुनौतियों तथा इस मसले पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रियाओं की चर्चा की है। इसमें संदेह नहीं कि आगामी कुछ दिनों तक केंद्र सरकार को जम्मू-कश्मीर की स्थिति पर कड़ी नजर रखते हुए वहां विश्वास बढ़ाने वाले तमाम उपाय करने होंगे, लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि घाटी को सुलगाने की कोशिश में लगे अलगाववादियों के साथ किसी प्रकार की नरमी न बरती जाए। घाटी के तथाकथित मुख्यधारा के नेताओं को भी यह समझना पड़ेगा कि उनका हित भारत सरकार के फैसले के साथ रहने में ही ज्यादा सुरक्षित है। जहां तक अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रियाओं का सवाल है तो अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि इस मसले पर पाकिस्तान के रोने-गाने का कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ने वाला। अमेरिका, यूरोपीय संघ के देशों सहित रूस से भी पाकिस्तान को कोई मदद नहीं मिलने वाली और अपने खराब मानवाधिकार के रिकॉर्ड के कारण चीन भी अपने सदाबहार दोस्त की कूटनीतिक मदद करने में सक्षम नहीं होगा। कुल मिलाकर, इस महत्वपूर्ण मामले में केंद्र सरकार अब तक सही दिशा में जा रही है और वह एक साथ अंतरराष्ट्रीय और आंतरिक दोनों मोर्चों पर अपने उद्देश्यों को साधने में सफल होगी। अंततः पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में कहूं, 'जब तक गंगा की धार, सिंधु में ज्वज्र, अग्नि में जलन, सूर्य में तपन शेष... कश्मीर पर भारत का ध्वज नहीं झुकेगा।' आशा है कि जम्मू-कश्मीर में संक्रमण की यह स्थिति शांतिपूर्वक रूप से निपट जाएगी।

चंदन कुमार, देवघर

पाक का अनर्गल प्रलाप

जम्मू कश्मीर को अनुच्छेद 370 से मुक्त करने के फैसले से पाक बेमतलब बौखला रहा है। कश्मीर में कोई विध्वंस तो नहीं हो रहा। लोगों की हिफाजत के लिए ही सुरक्षाबलों की संख्या को बढ़ाया गया है। संभावित उपद्रव फैलाने वालों को नजरबंद किया गया है। कश्मीरियों की हरसंभव मदद व काला दिवस मनाने की बातें हम पर कोई दबाव नहीं बना सकतीं। कूटनीतिक संबंधों को तोड़ने का भी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। कश्मीर हमारा आंतरिक मामला है। उसे संयुक्त राष्ट्र में उठाने की बात बेमानी लगती है। कश्मीर से पाक को क्या लेना-देना। इन सब बातों से साफ जाहिर होता है कि कश्मीर में उपद्रव, अलगाववाद, आतंकी हमले ये सब परदे के पीछे पाक की ही कारस्तानियां रही हैं। हमें कश्मीर में कानून-व्यवस्था मजबूत बनाए रखना ही है, साथ ही पाकिस्तान से भी सतर्क रहने की जरूरत है।

mahesh_nenava@yahoo.com

सुषमा का योगदान

दैनिक जागरण (हरियाणा संस्करण) के 8 अगस्त के अंक में संपादकीय, हरियाणा का गौरव में पूर्व विदेश मंत्री का सबसे बेहतरीन आकलन है। इसमें उचित कहा है कि सामाजिक क्षेत्र में उनका अतुलनीय योगदान वर्षों तक भुलाया नहीं जा सकेगा। सुषमा स्वराज का महाप्रयाण भारतीय राष्ट्रीय राजनीति और अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में बहुत बड़ा सूनापन दे गया है। राजनीति का ककहरा सीखते हुए सुषमा ने भाजपा को भारतवर्ष की राजनीति में हरियाणा को विशेष पहचान दिलाई। वह संघर्ष, बलिदान की विभिन्न कथाएं लिखते हुए अनंत काल तक अपनी पहचान छोड़ गई हैं।

युगल किशोर शर्मा, फरीदाबाद

सुषमा का ओजस्वी स्वरूप

भारतीय राजनीति में महिलाओं ने अहम योगदान दिया है। हमारे देश में प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति जैसे महत्वपूर्ण पद को भी महिलाओं ने सुशोभित किया है। भारत की राजनीति में जब भी किसी ऐसी महिला की बात की जाएगी जिसने सत्ता पक्ष व विपक्ष दोनों को जोड़ने का काम किया तो वह निःसंदेह सुषमा स्वराज ही होंगी। भारत की पूर्व विदेश मंत्री रहीं सुषमा स्वराज ने विश्व पटल पर भारत का ऐसा प्रतिनिधित्व किया जो अब तक कुछ ही लोग कर पाए। संयुक्त रा